भारतीय ज्ञान परंपरा

संस्कृति, दर्शन, शैक्षिक विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा :

संस्कृति, दर्शन, शिक्षा विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,

अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2022-2023

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 64 - 6

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

14. भारतीय संस्कृति और यज्ञ चिन्तन

डॉ. किरण बडेरिया
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय संस्कृति आदिकाल से ही सृजनशील और समृद्ध रही है। इसके विकास की प्रक्रिया वेदों के प्राक्कटन के साथ ही प्रारंभ हुई। ऋग्वैदिक ऋषियों ने 'सत्' की अनंत संभावनाओं और उसके चिन्तन में सर्वतोमुखी दर्शन को विवेचित किया, जो मानव मन की आधारशिलाएँ निर्मित करता है। यही उदात्त प्रवृत्तियाँ कालिदास जैसे महाकवियों द्वारा हिमालय के समान ऊँचाई के मापदंड के रूप में स्वीकार की गईं।

भारतीय संस्कृति को समझने का सर्वोत्तम मार्ग यह है कि उसे समग्र दृष्टि से देखा और आत्मसात् किया जाए। इसका गूढ़ अर्थ यही है कि संस्कृति निरन्तर अभिव्यक्ति के लिए संघर्षरत रही है, और इस संघर्ष के माध्यम से ही उसका वास्तविक स्वरूप सामने आता है।

भारत में संस्कृति चिन्तन विभिन्न मतों, दार्शनिक पद्धतियों, कलात्मक अभिरुचियों, भाषाओं, साहित्य और जीवन दृष्टियों के माध्यम से प्रकट हुआ। भारतीय जनमानस ने न केवल इन विविधताओं को आत्मसात किया, बल्कि संस्कृति की चेतना को समय-समय पर आए उतार-चढ़ाव के बावजूद अक्षुण्ण रखा। इसे पुरुषार्थ और साधना के साथ जोड़कर देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति केवल सांस्कृतिक उपलब्धियों का संग्रह नहीं, बल्कि जीवन दर्शन और चेतना का अनवरत प्रवाह है।

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष एक साथ साधन और साध्य का समन्वित रूप प्रस्तुत करते हैं। धर्म ही संस्कृति का मूल आधार है। जो अर्थ और काम धर्म के अनुरूप हैं, वे संस्कृति में स्वीकार्य हैं; और जो इसके विरोधी हैं, वे या तो विकृति बन जाते हैं या पतन को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार संस्कृति और धर्म का संबंध अनिवार्य और परस्पर सहायक है।

भारतीय संस्कृति मूलतः आध्यात्मिक संस्कृति है। यह केवल जीवन की प्रयोगशाला में उद्घाटित सत्य की प्रमाणिकता नहीं प्रस्तुत करती, बल्कि जीवन के विविध पक्षों में सामंजस्य और संतुलन स्थापित करने का माध्यम भी है। इसमें वैषम्य में साम्य स्थापित करना ही उद्देश्य है। भारतीय आध्यात्मिकता की शक्ति ने ज्ञान के उच्चतम स्रोतों से आने वाली प्रेरक और उदार रश्मियों के माध्यम से मानव जीवन को दिशा और बल प्रदान किया है।

यज्ञ को शतपथ ब्राह्मण ने श्रेष्ठतम कर्म माना है। भारतीय दर्शन में सृष्टि और उसके संचालन का प्रतीक यज्ञ है। यज्ञ मनुष्य को उसके जीवन के नियमों और कर्तव्यों की याद दिलाता है और यह सुनिश्चित करता है कि यज्ञ एवं आत्म-त्याग ही सृष्टि का उद्देश्य और आधार हैं। यज्ञ के माध्यम से मानव अपनी सीमितता और मृत्यु के बंधनों को पार करता है, और जीवन को उच्चतम आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचाता है।

भारतीय दर्शन में जीवन को पूर्ण रूप से विकसित करने के लिए कर्मयज्ञ, ज्ञानयज्ञ और उपासना यज्ञ की अवधारणा पर विशेष बल दिया गया है। इन यज्ञों के माध्यम से मानव न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन को संतुलित करता है, बल्कि सामाजिक और पारलौकिक कर्तव्यों का निर्वाह भी सुनिश्चित करता है।

कर्मयज्ञ मानव के लौकिक जीवन की गतिविधियों से जुड़ा है। इसमें सोलह संस्कार, शिक्षा, आहार, वस्त्र, गृह, समाज, राज्य, कृषि, ज्योतिष, स्थापत्य, संगीत, ललित कला, गणित, भूगोल, वाहन और युद्ध की विधाएँ सम्मिलित हैं। यह यज्ञ व्यक्ति को सामाजिक, पारिवारिक और राज्य स्तर पर जिम्मेदार बनाता है और जीवन में अनुशासन और कर्तव्यनिष्ठा का मार्ग प्रशस्त करता है।

ज्ञानयज्ञ आध्यात्मिक और दार्शनिक चेतना का प्रतीक है। इसमें ईश्वर, जीव, कर्मफल, पुनर्जन्म, सृष्टि, प्रलय, वर्णाश्रय और स्वाध्याय जैसे तत्व सम्मिलित हैं। यह यज्ञ मनुष्य को सत्य और ज्ञान की ओर आकर्षित करता है, उसे ब्रह्माण्ड के नियमों और जीवन के गूढ़ अर्थों के प्रति सजग बनाता है।

उपासना यज्ञ मन और आत्मा के शुद्धिकरण का माध्यम है। इसमें सदाचार, दया, प्रेम, दर्शन, भक्ति, वैराग्य, योग और समाधि जैसी क्रियाएँ शामिल हैं। यह यज्ञ मानव को अपने आत्मिक विकास और उच्चतम आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचाने में सहायता करता है।

भारतीय यज्ञ प्रणाली के साथ ही पाँच उत्तरदायित्व—देव, पूर्वज, गुरु,

साथी और पशु—संस्कृति और नैतिकता की नींव हैं। इन कर्तव्यों और यज्ञों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म माना गया है। मानव के पाप भी इन कर्तव्यों का उल्लंघन करने से उत्पन्न माने गए हैं, जैसे खरल, बट्टा, सिल, झाड़, आग और पानी के कारण जीवों का अनावश्यक हनन।

ब्राह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और भूतयज्ञ—इन पाँच यज्ञों के माध्यम से मनुष्य अपने कर्तव्य, ज्ञान और साधना में संतुलन स्थापित करता है। यज्ञ केवल कर्मकांड या अनुष्ठान नहीं है; यह सृष्टि, समाज और मानव जीवन के प्रत्येक स्तर पर सामंजस्य और संतुलन का सूत्रधार है। यज्ञ ही समाज और प्रकृति के बीच के परस्पर संबंध को स्पष्ट करता है और मानव को अपनी सीमाओं और जिम्मेदारियों की याद दिलाता है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ केवल एक अनुष्ठान नहीं, बल्कि आवश्यक धर्म और जीवन के कर्तव्य का सर्वोच्च रूप माना गया है। यज्ञ का सार है सत्कर्म, अर्थात् ऐसे कर्म जो धर्म, नैतिकता और मानवता के अनुरूप हों। सार्वजनिक जीवन में यज्ञ को मानव कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के संदर्भ में समझा गया है।

परम तत्व, जिसे श्री अरविन्द ने अविनाशी और सर्वकालिक रूप में प्रस्तुत किया है, यज्ञ में व्यक्त होता है। यज्ञ के माध्यम से जीवन में त्याग और भोग का संतुलन स्थापित होता है। ऋत्, अर्थात् नियम और सही मार्ग, यज्ञ द्वारा जीवन में अपनाया जाता है। यज्ञ सत्य, शिव और सुन्दर को अपने में समाहित करता है। इसमें कर्म शुभ होने चाहिए और उन्हें अनासक्त भाव से किया जाना चाहिए। जब व्यक्ति हवनकुण्ड से अपनी श्रद्धा और स्वाहा की ध्वनि के साथ कर्म करता है, तब यज्ञ वास्तविक रूप से कर्तव्य कर्म बन जाता है।

अग्नि तत्व यज्ञ में ज्ञान और कर्म की शक्ति का प्रतीक है। यह भूत माध्यम से प्रकट होता है, जबकि अक्षर शक्ति के माध्यम से क्षर तत्व प्रकट होता है। यही यज्ञ की गूढ़ शक्ति और रहस्य है। यज्ञ अविद्या, अज्ञान और तमस से दूर जाकर बुद्धि, तेज और कर्म के तात्विक विवेचन को प्रकट करता है। इसके द्वारा आध्यात्मिक शक्ति का पुनर्भाव होता है और व्यक्ति अपने जीवन में धर्म, ज्ञान और कर्म के मार्ग पर अग्रसर होता है।

यज्ञ केवल कर्मकांड या अनुष्ठान नहीं है, बल्कि कर्म, ज्ञान और आदर्श का उत्कृष्ट संगम है। भारतीय संस्कृति ने यज्ञ के माध्यम से उपासना में कर्म और ज्ञान दोनों को समाहित किया है। श्रीमद्भागवत में स्वयं भगवान कृष्ण के मुख से यह

संदेश स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। यज्ञ का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि समग्र समाज और राष्ट्र के कल्याण की भावना से प्रेरित कर्म करना है।

संस्कृति दर्शन में यज्ञ को शुद्धतम कर्मवाद का रूप माना गया है। इसे एक प्रकार का राष्ट्रीय उत्सव भी कहा जा सकता है, जिसे समाज के प्रत्येक वर्ग ने समान भाव और श्रद्धा के साथ स्वीकार किया। यज्ञ अनासक्त भाव, जनहित और ज्ञानपूर्वक किया जाता है। इसके माध्यम से न केवल व्यक्ति की आत्मा और बुद्धि का विकास होता है, बल्कि समाज में सामूहिक चेतना और नैतिकता का प्रसार भी होता है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का महत्व मानव के समग्र विकास और उसके उच्चतम लक्ष्य के साधक के रूप में स्वीकार किया गया है। शास्त्रानुसार यद्यपि यज्ञ विभिन्न विधियों और प्रवृत्तियों में प्रकट होता है, फिर भी इसका मूल उद्देश्य हमेशा मानव के जीवन में सत्य, धर्म और ज्ञान को स्थापित करना ही रहता है। यज्ञ जीवन को अर्थपूर्ण बनाता है और समाज तथा व्यक्ति के बीच संतुलन और सामंजस्य की स्थापना करता है।

यज्ञ में वाचादेवता और वाचा ब्रह्मा को ब्रह्म का पर्याय माना गया है। यहाँ वाणी की मधुरता कर्म की शुद्धता के साथ जुड़ी होती है, और यह मानव जीवन में माधुर्य तथा संस्कृति दर्शन का विशिष्ट रूप प्रस्तुत करती है। इसे प्राप्त करना मानव का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य माना गया है।

वैदिक यज्ञों का सामगान उनके महत्व को और स्पष्ट करता है। बाह्य दृष्टि से यज्ञ को सामान्यत: दो भागों में बाँटा जा सकता है: 1. दैनिक पंच महायज्ञ, 2. श्रौत यज्ञ।

पंचमहायज्ञ शतपथ ब्राह्मण में 'सत्र' के रूप में वर्णित हैं: भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ। ब्रह्मयज्ञ प्रतिदिन वेदाध्ययन या स्वाध्याय के रूप में किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में ब्रह्मयज्ञ की प्रशंसा अलंकारिक शैली में की गई है।

अग्निहोत्र को देवयज्ञ कहा गया है। वर्तमान समय में इसका पालन घी का दीपक, अगरबत्ती या धूपबत्ती प्रात: एवं सायं जलाकर किया जाता है, परंतु वस्तुत: यह केवल भौतिक पूजन नहीं है। यह यज्ञ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और

आकाश जैसी प्राकृतिक शक्तियों की शुद्धता सुनिश्चित करता है। यज्ञ समाज और प्रकृति के बीच सहअस्तित्व और सामंजस्य का संदेश देता है। यही यज्ञ का मूल उद्देश्य है—मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन और शुद्धता बनाए रखना।

पृथ्वी यज्ञ का मूल भाव पूर्वजों की परंपराओं और कर्तव्यों का पालन करना है। इसमें पिता, माता और आचार्य का आदर-सम्मान करना यज्ञ का मूल उद्देश्य माना गया है। यह मानव को अपने संबंधों और सामाजिक दायित्वों के प्रति सजग बनाता है।

भूत यज्ञ सभी प्राणियों को यथासंभव भोजन और संरक्षण देने की शिक्षा देता है। इसमें दिन की पहली रोटी गाय के लिए, अंतिम रोटी कुत्ते के लिए, और प्रात:काल पक्षियों, चीटियों तथा अन्य जीवों को दाना देने के बाद ही स्वयं भोजन करना उचित समझा गया है। इस प्रकार यह यज्ञ सर्व जीवभानुता और करुणा* का संदेश देता है।

अतिथि यज्ञ भारतीय संस्कृति की अनुपम परंपरा है, जिसमें अतिथियों का सम्मान, उनका सत्कार और उनकी इच्छाओं की पूर्ति यथा सामर्थ्य करना शामिल है। अतिथि के माध्यम से जीवन के उच्चतम मूल्य और उपदेश प्राप्त होते हैं।

संस्कारों के माध्यम से आत्मा और अंत:करण शुद्ध होते हैं। उत्तम संस्कारों की शृंखला मानव को सार्वभौमिक नैतिकता और सामाजिक चेतना प्रदान करती है। यज्ञ इसी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संस्कारों का प्रतीक है। यह मानव जीवन में आत्म-कल्याण, आचरण की पवित्रता, और सामाजिक उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। यज्ञ केवल कर्म का अनुष्ठान नहीं, बल्कि मानव की जीवन शक्ति और सार्वभौमिक गौरव का आधार है।

यज्ञ मानव जीवन में अभ्युदय (सामयिक कल्याण) और नि:श्रेयस (परम कल्याण) दोनों के लिए मार्गदर्शक है। पूर्व मीमांसा दर्शन के अनुसार यज्ञ कर्म का सदाचारपूर्ण और स्तुत्यात्मक अर्थ प्रस्तुत करता है। जैमिनी के विचार में यज्ञ ही सदाचार का पर्याय है, और यज्ञविहीन सदाचार कदाचार के रूप में माना गया है। यज्ञ का अभ्यास मानव को सभी भेदभाव और सीमाओं से ऊपर उठाकर सर्व-समावेशी संवेदनाओं के साम्राज्य में पहुँचाता है।

यज्ञ में त्याग और भोग का समन्वय जीवन की सार्थकता सुनिश्चित करता है। यजुर्वेद का कथन 'तेनव्यक्तेन भुन्जीथा:' यही स्पष्ट करता है कि भोग करते

समय यदि व्यक्त भाव से किया जाए, तो आसक्ति कम होती है। त्याग और भोग विरोधी नहीं, बल्कि संतुलित और संस्कारित जीवन की पहचान हैं।

आहुति देने के माध्यम से साधक सदाचार के मानवीय तत्वों को आत्मसात करता है और आध्यात्मिक अनुष्ठान के फल की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार यज्ञ न केवल व्यक्तिगत कल्याण का साधन है, बल्कि इसमें संस्कृति के सार्वभौमिक विचार और दार्शनिक सिद्धांत भी समाहित होते हैं। यज्ञ का यह दार्शनिक स्वरूप मानव जीवन को संतुलन, अनुशासन और आत्मा के उत्थान की ओर प्रेरित करता है।

स्वामी श्रद्धानन्द और भारतीय संस्कृति में यज्ञ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मानव जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक सुख या सत्ता नहीं, बल्कि संतुलित, संस्कारित और राष्ट्रभक्तिपूर्ण जीवन है। स्वामी श्रद्धानन्द ने शिक्षा, गुरुकुल और पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना, धर्मनिष्ठा और सामाजिक उत्तरदायित्व का संचार किया। उन्होंने राजनीति और धर्म को अलग नहीं माना; उनके अनुसार धर्म और यज्ञ के मूल तत्व ही राष्ट्रीय उत्थान, चरित्र निर्माण और सामाजिक कल्याण के आधार हैं।

यज्ञ भारतीय संस्कृति में त्याग, भोग और अहंकार रहित कर्म का मार्गदर्शन करता है। कर्म, ज्ञान और उपासना के माध्यम से यज्ञ साधक को अभ्युदय और निःश्रेयस की ओर ले जाता है। पंचमहायज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ मानव जीवन के सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक पक्षों को संतुलित करते हैं। यज्ञ का वास्तविक उद्देश्य सर्वजनहित, सदाचार और आध्यात्मिक उत्थान है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्वामी श्रद्धानन्द की राष्ट्रभक्ति और यज्ञ-संस्कृति का दर्शन मानव को न केवल व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों के प्रति सजग करता है, बल्कि उसे राष्ट्रीय चेतना, आध्यात्मिक विकास और जीवन के उच्चतम आदर्शों की ओर अग्रसर करता है।

❑❑❑